International Journal Of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.2,Feb. 2013 ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

साहित्य के सामाजिक सरोकार

आनन्द प्रकाश

'आर्टिस्ट'
अध्यक्ष, आनन्द कला मंच एवं शोध संस्थान,
सर्वेश सदन, आनन्द मार्ग, कोंट रोड़ भिवानी

सारांश

साहित्य के सामाजिक सरोकर विषय के अन्तर्गत साहित्य और समाज दो क्षेत्र हैं और सरोकर एक ऐसा कारक है जो इन दोनो क्षेत्रों को आपस मे जोड़ता है। क्योंकि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से '' 'सरोकर' शब्द अंग्रेजी के 'कॉन्सर्न' अथवा 'कान्सर्नमेन्ट' का अनुवाद है, जिसे सम्बन्धशीलता, चिन्ता, उद्विग्नता, दिलचस्पी, हस्तक्षेप आदि के अर्थ में ग्रहण किया जाता है।''[1] एक अन्य अर्थ के मुताबिक सरोकर से अभिप्रायः है – 1 वास्ता, 2 परस्पर व्यवहार या सम्बन्ध।[2] अतः इस दृष्टि से साहित्य के सामाजिक सरोकार का संक्षिप्त तथा अधारभूत आश्य यह हुआ कि जो भी कारक मानवीय सरोकरों जैसे कि मानव अर्थात व्यक्ति से सम्बंधित चिन्ता अथवा व्यक्ति की स्वयं की चिन्ताएँ, उसके द्वन्द्वअथवा अन्तर्द्वन्द्व या मानवता के आग्रह पर जो भी कुछ सोचा जाता है, से प्रेरित होकर साहित्यकार के माध्यम से साहित्य में समाहित होते हैं और समाज का मार्गदर्शन करते हैं अथवा मनुष्य की विचारधारा को एक नई दिशा देते हैं सामाजिक सरोकार कहे जा सकते हैं।

प्रस्तावना

इस प्रकार के सामाजिक सरोकार असल में वो सामाजिक मुद्दे होते हैं जो साहित्य में किसी रचना अथवा कृतिविशेष की विषय वस्तु बनते हैं और प्रस्तुत विशय वस्तु के आधार पर लेखक अथवा साहित्यकार अपने विचार अथवा अर्थपूर्ण सन्देश को समाज अथवा समाज की इकाई व्यक्ति तक पहुँचाता है या पहुँचाने का प्रयास करता है। ''सहित्यकार द्रष्टा भी है और सृष्टा भी। वह आँखें खोलकर समाज को देखता है और पुनः उसके शोधन का उपाय करता है। अपनी कल्पना की विलक्षण शक्ति से वह भविष्य का निर्माण करता हैं; समाज का मार्ग–दर्शन करता है। वह अपनी कल्पना से समाज को आदर्श की ओर प्रेरित करता है। समाज साहित्य से प्रेरणा और जीवन ग्रहण करता है।''[3] इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि साहित्य और समाज का सम्बन्ध स्थापित करने वाले वो सभी विषय सामाजिक सरोकारों के दायरे में आते हैं जो साहित्य में किसी रचना अथवा कृति के सृजन का आधार बनकर सामाजिक चेतना और समाज में मानवीय सरोकारों के प्रति चेतना का उद्देश्य अथव लक्ष्य पूरा करते हैं।

इस दृष्टि से सामाजिक सरोकारों के शीर्षक और उप शीर्षक विद्वानों की अपनी–अपनी शोध दृष्टि और व्यक्तिगत अनुभव अथवा अध्ययन के कारण भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। किन्तु इन सब में यह बात निश्चित रूप से समान मिलेगी कि इनके केन्द्र में मानव अथवा व्यक्ति होगा और व्यक्ति का परिवेश होगा समाज क्योंकि व्यक्ति के बिना समाज नहीं है और समाज के बिना सामाजिक सरोकार नहीं हैं। साहित्य में अभिव्यक्त व्यक्ति अथवा साहित्यकार की सामाजिक चेतना सामाजिक सरोकारों से प्रेरित भी होती है और इनकी प्रतिपादक भी है। ''सामाजिक प्राणी होने की वज़ह से मनुष्य अपने लिए एक सुन्दर समाज की रचना हेतु चिन्तन–मनन करता है, उससे साहित्य के क्रमिक विकास को बल मिलता है। समाज में मनुष्य के एकाकीपन से उत्पन्न उदासीनता को, साहित्य मनोरम क्षणों में बदल देने की क्षमता रखता है। साहित्यकार का जीवन उसके अपने समाज में ही व्यतीत होता है, वहीं जीवन के अभावों से जूझता और भावो में आनन्द प्राप्त करता है ; सुख–दुःखात्मक परिस्थितियों और घटनाओं से संघर्षरत रहता है।''[4] अतः साहित्य में जब ऐसे व्यक्ति की संवेदनाएँ एक सामान्य जन के सामने प्रस्तुत होती हैं तो निश्चित रूप से वह भी इन संवेदनाओं और भावनाओं को कहीं न कहीं अपने से जुड़ा पाता है और साहित्य से समाज के इस सम्बन्ध अथवा जुड़ाव को सामाजिक चेतना के संदर्भ में स्वीकारने से पीछे नहीं हटता।

सामाजिक चेतना से जुड़े साहित्य के कुछ प्रमुख सरोकार – 1. व्यक्ति और उसका परिवेश, 2. समाज और राजनीति, 3. साहित्य और संस्कृति, 4. व्यक्ति और विचार धारा और 5. सामाजिक चेतना के विविध आयाम और समसामयिक विषय अथवा मुद्दे हो सकते हैं। साहित्य और समाज के सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शीर्षकों के तहत साहित्य के इन सामाजिक सरोकारों की विवेचना हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं।

1.व्यक्ति और उसका परिवेश :

साहित्य सामाज का दर्पण है। व्यक्ति समाज की इकाई है। अतः व्यक्ति और उसके परिवेश तथा युग की घटनाओं का साहित्य में चित्रित होना स्वाभाविक ही है। ''युग जीवन प्रतिबिम्बत होने से साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्वतः सिद्ध है।''[5] साहित्य व्यक्ति के परिवेश में व्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने, दुःख के क्षणों में सांत्वना देने और सुख के क्षणों मे खुशी को बढ़ाने का काम करके व्यक्ति और उसके परिवेश की अभिव्यक्ति का न केवल एक सुदृढ़ आधार बनता है बल्कि एक व्यक्ति को साहित्य से और व्यक्ति के माध्यम से साहित्य को सामाज से जोड़ने का काम करता है। प्रेमचन्द का साहित्य व्यक्ति और उसके परिवेश के चित्रण का एक उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। ध्यातव्य है कि इसके मूल में भी सामाजिक सरोकार हैं। हम कह सकते हैं कि समाज से सरोकार न रखने वाला व्यक्ति साहित्य से भी सरोकार रखता नही मिलेगा और जो व्यक्ति साहित्य से सरोकार रखेगा वह समाज से भी सरोकार रखता मिलेगा। क्योंकि साहित्य व्यक्ति की

Please cite this Article as :*आनन्द प्रकाश ,साहित्य के सामाजिक सरोकार* **: International Journal Of Creative Research Thoughts (Feb. ; 2013)**

उस आवश्यकता को पूरी करता है जिसके तहत वह समाज के बारे में कुछ जानना और जानकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना चाहता है। इस प्रतिक्रिया को लेखक स्वयं अभिव्यक्त कर देता है तो पाठक लेखक की अभिव्यक्ति को अपने ही जैसी मान कर अपने आप को साहित्य से जुड़ा हुआ पाता है। लेखक हो पाठक दोनों ही सामाजिक परिवेश में जीवन जीते हैं। दोनों की अनुभूतियॉ लगभग एक जैसी होती हैं। अतः साहित्य से दोनों का सरोकार बराबर का रहता है और उनका यह सरोकार समाज से सम्बद्ध होने के कारण एक प्रमुख समाजिक सरोकार कहा जा सकता हैं।

2.समाज और राजनीतिः

समाज का अपना एक स्वतन्त्र स्वरूप और व्यवस्था होने के बावजूद देश की राजनीति उसे प्रभावित करती है। एक तरह से राजनीति मानव जीवन का अपरिहार्य अंग और कटु सत्य है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में राजनीति से जुड़ा देखा जा सकता है। यह राजनीति समाज की राजनीति भी हो सकती है और राष्ट्र की भी। पर सच बात यह है कि राजनीति और उसके प्रभावों की परिणती मानव जीवन को अनिवर्यतः प्रभावित करती है और यह प्रभाव और इसके कारक साहित्य में अभिव्यक्ति पाकर साहित्य के सामाजिक सरोकार के रूप मे सामने आते हैं। वर्तमान में भ्रष्टाचार और दूसरी राजनीतिक–सामाजिक समस्याओं को लेकर सामाजिक कार्यकर्ता अपने–अपने स्तर पर जो कुछ भी कर रहें है वह साहित्य में स्थान पाकर साहित्य के सामाजिक सरोकारों को स्पष्ट कर रहा है। ऐसा तब भी हुआ था जब हमारा देश ब्रिटिश साम्राज्य का गुलाम था और अब भी हो रहा है जब कि हम स्वतंत्र है। हमारा अपना लोकतन्त्र है किन्तु लोकतन्त्र जब समाज को रास नही आता है तो समाजिक कार्यकर्ता अपनी राजनीति के साथ समाज का नेतृत्व करते है और व्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाते है। उनकी इस आवाज को साहित्य ही सबसे पहले और मज़बूत तरीके से बुलंद करता है। अतः समाज और राजनीति के बीच समन्वय बनाए रखना और व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाना समाज और राजनीति की दृष्टि से साहित्य का एक सामाजिक सरोकार है।

3.साहित्य और संस्कृति :

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने की वज़ह से यह समाज की संस्कृति का संवाहक है। अगर और भी स्पष्ट शब्दों में कहें तो हम कह सकते हैं कि यह संस्कृति का संवाहक ही नहीं बल्कि संरक्षक भी हैं। साहित्यिक कृतियों के अभाव में दूर–दर्शन अथवा दूसरे दृष्य माध्यमों द्वारा विकृत की जा रही संस्कृति को बचाने का सन्देश भी साहित्य द्वारा ही दिया जा सकता है। साहित्य ही एक आम पाठक को बता सकता है कि उसके अपने समाज की सामाजिक संस्कृति क्या थी और उसे अब किस रूप में परोसा जा रहा है। संस्कृति का सीधा सम्बन्ध मानवीय मूल्यों और संस्कारों से होता है। अतः साहित्य मानवीय मूल्यों की रक्षा करता है और संस्कारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करता है। यह सब साहित्य के सामाजिक सरोकारो के तहत ही सम्भव हो पाता है।

4.व्यक्ति और विचारधारा :

''जब समाज मे व्यक्ति संघर्श, द्वन्द्वएवं अन्तर्द्वन्द्वके दौर से गुजरता है, शोषण का शिकार होता है, आर्थिक विषमयताओं का सामना करता है या फिर ऊँच–नीच की भावना और छुआछूत जैसी समस्याओं से आहत होता है तो वहां वह सामजिक वैशम्य का अनुभव करता है। उसकी इसी अनुभूति के परिणाम स्वरूप सामाजिक चेतना का उदय होता है।''[6] व्यक्ति की यह सामाजिक चेतना या तो किसी नई विचारधारा को जन्म देती है या फिर व्यक्ति समाज में पहले से प्रचलित विचारधारा का समर्थन करके उससे जुड़ जाता है। पर व्यक्ति किसी विचारधारा का समर्थन करे या ना करे, के अन्तर्द्वन्द्व से साहित्य ही व्यक्ति को उबारता है अर्थात उसका मार्गदर्शन करता है। साहित्य की एक पंक्ति अथवा एक शब्द में समाहित विचार में भी इतनी शक्ति हो सकती है कि पूरे का पूरा समाज किसी एक विचार धारा से जुड़ सकता हैं। उदाहरण के तौर पर 'इंकलाब ज़िन्दाबाद' का नारा केवल एक नारा न होकर क्रान्ति की प्रेरणा का ऐसा बीज मन्त्र है जिसने समाज के प्रत्येक वर्ग को आज़ादी की राह मे संघर्ष के लिए प्रेरित किया है। लार्ड कर्जन ने जब 11 सितम्बर 1905 को बंग–भंग किया था तब वन्देमातरम का उद्घोष ही स्वस्फूर्त जनचेतना का संवाहक बना था और बहुत कम लोग जानते हैं कि उस वर्ष रक्षाबन्धन के दिन किसी घर में भोजन नहीं बनाया गया था और लोगों ने नंगे पाँव चलकर गंगा तट पर पहुँच कर स्नान किया था और एक दूसरे को राखियाँ बांधते हुए हुए 'वन्देमातरम' का उद्घोष किया था। ''इस घटना के बाद पूरे बंगाल मे वन्देमातरम बोलने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वन्देमातरम बोलने वालों को तालाबों में फेंका गया, उस क्षेत्र की बहु–बेटियों की इज्ज़त लूट ली गई, लोगों को अमानवीय यातनाएं दी गई ; फिर भी जनता ने इस मन्त्र को जारी रखा। अरविन्द घोष ने तो वन्देमातरम नाम से साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू कर दिया।''[7] साहित्य के सामाजिक सरोकार का विचार धारा को लेकर इससे बड़ा उदाहरण हो भी क्या सकता है कि सन् 1884 मे बंकिकम चन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित उपन्यास के गीत वन्देमातरम ने आज़ादी के दीवानों को गौरो की बर्बरता का मुक़ाबला करने की ताक़त दी और इसी ''बीज मन्त्र के बल पर क्रान्तिकारी हंसते–हंसते फॉसी का फन्दा चूम लेते थे।''[8] अलावा इसके और भी बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जो साहित्य के सामाजिक सरोकरों को व्यक्ति और विचार धारा की दृष्टि से प्रमाणित करते हैं।

5.सामाजिक चेतना के विविध आयाम और समसामयिक मुद्दे अथवा विषय :

''सामाजिक जागरण का कार्य मुख्य रूप से उन लेखकों साहित्यकारों द्वारा सम्पन्न होता है जो स्वयं सामाजिक चेतना से सम्पन्न होते हैं। समाज में विपरीत अर्थात प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ ऐसी प्रतिभाएँ उभर कर सामने आती हैं जिन्हे सामाजिक व्यवस्था के नए–नए किन्तु कटु अनुभव होते हैं – ये प्रतिभाएँ समझती हैं कि ऐसी परिस्थितियाँ व्यक्ति व समाज के विकास मे बाधक हैं।''[9] व्यक्ति के परिवेश में ऐसी परिस्थितियाँ व्यवस्था के नाम पर अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, मानवीय मूल्यों के ह्रास, परिवारिक विघटन, नारी–पुरुषों के सम्बन्धों में द्वन्द्व, सामाजिक संघर्ष व व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व, प्रवासी मज़दूरों व बाल श्रमिकों के शोषण और लोक विश्वास व अन्धविश्वास और सामाजिक रीतियों व कुरीतियों से जनित समस्ययाएँ हो सकती हैं। इन सबसे निपटने के लिए व्यक्ति अथवा समाज साहित्य का सहारा लेता है और साहित्य की शक्ति के सन्दर्भ में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बम के गोलों मे भी नहीं पाई जाती है। ''[10] अतः इसी शक्ति के सहारे साहित्यकार उस व्यवस्था का विरोध करता है जो मानवीय मूल्यों, भावनाओं और हितो को ठेस पहुँचाती है। जैसे कि महिलाओं एवं बालकों का शोषण, किसानों एवं मज़दूरों का शोषण पूंजीवादी व्यवस्था और इससे जनित किसान, मज़दूर व आमजन की दुर्दशा जब साहित्य में चित्रित होती है तो इसका सीधा सम्बन्ध समाज से जुड़ता है। इस तरह से पारीवारिक विघटन के कारण जब व्यक्ति के जीने के तौर–तरीके प्रभावित होते हैं तो साहित्यकार इस बिखराव को रेखांकित करके व्यक्ति को यह ऐहसास कराता है कि वह समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी तरह से स्वतन्त्र व स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को नियन्त्रित करने व पाश्चात्य प्रभाव से अपने समाज व इसकी संस्कृति को बचाने का सन्देश भी सबसे पहले साहित्य ही समाज को देता है। लोक विश्वासों के प्रति विश्वास रखने के बावजूद अंधविश्वासों से

बचने की प्रेरणा भी साहित्य देता है। इतिहास गवाह है कि साहित्य ने परदा प्रथा, सती प्रथा बाल विवाह, जनसंख्या वृद्धि और कन्याभ्रूण हत्या जैसी सामाजिक समस्याओं पर नियन्त्रण पाने में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समसामयिक मुद्दों की यदि हम चर्चा करें तो कह सकते हैं कि राजनीति में व्याप्त भ्रश्टाचार और कन्याभ्रूण हत्या जैसे विषयो पर साहित्यकार खूब लिख रहे हैं। यह लिखना भलें ही पत्र पत्रिकाओं में लघु आकार की रचनाओं अथवा संपादक के नाम पत्रों और इंटरनेट पर अपने ब्लॉग पर किसी विचार अथवा टिप्पणी के रूप में ही क्यों न हो पर जब लेखक की कलम से कुछ लिख जाता है तो सब का ध्यान अपनी और खींचता है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। ''क्योंकि एक लेखक आम व्यक्तियों से अधिक संवेदनशील होता है इसलिए समाज की विकृतियों, रुढ़ियाँ, भ्रांतियाँ, शोषण और संघर्ष युगीन परिस्थितियों के मुताबिक उसे ही सबसे अधिक प्रभावित करते हैं।''[11] साहित्यकार एक व्यक्ति के तौर पर स्वयं भी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करता है और समाज को भी इसके लिए प्रेरित करता है। ऐसी स्थिति में ''व्यक्ति अपने वर्गभेद को भुलाकर सिर्फ और सिर्फ समाज की इकाई के रूप मे व्यक्ति के हित को ध्यान मे रखता है और अपने दायित्वों एवं कार्यों का निर्वहण जनहित मे करता है या करने का प्रयास करता है।''[12]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि साहित्यकार के माध्यम से साहित्य और समाज को जोड़ने वाला प्रत्येक कारक सामाजिक सरोकार का आधार है और इस आधार पर टिका साहित्य और समाज का हर वह सम्बन्ध साहित्य का सामाजिक सरोकर है जो समाज की इकाई व्यक्ति को सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने, अपने सुखात्मक व दुखात्मक क्षणों में द्वन्द्वव अन्तद्वन्द्वों से उबारने और जीवन यापन के लिए एक नई किन्तु विकासात्मक दिशा देने का प्रयास करता है। साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि सामाजिक सरोकार साहित्य को नवीनतम विषय वस्तु देते हैं तो साहित्य भी इस विषयवस्तु की डाल पर भविष्य के फूल खिलाकर समाज को देता है और समाज साहित्य के दर्पण मे इन फूलों की पगडण्डी पर बिखरे काँटों को पहचान कर अपने पाँवों को मजबूत करना और काँटों से दामन बचाना सीख सकता है – और सीख सकने का यह विश्वास ही साहित्य और समाज के सम्बन्ध को प्रगाढ़ बनाता है। अतः साहित्य और समाज का एक दूसरे के प्रति गहरा लगाव और विश्वास ही सबसे बड़ा सामाजिक सरोकार है – बाकी सभी सरोकार इसकी छाया तले पलते हैं।

संदर्भ :

1.डॉ. विजय शर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य (मानवीय सरोकारों के दर्पण में)पृ. 9
2. डॉ.जयनारायण कौशिक, हरियाणवी–हिन्दी शब्द कोश, पृ.808.
3. डॉ.गोविन्दलाल छाबड़ा, हिन्दी निबन्ध (साहित्य और समाज) पृ. 246.
4. वही, पृ.237.
5. वही, पृ.236.
6. सुनीता आनन्द, (अप्र.शो.प्र.) उदयभानु हंस के काव्य में सामाजिक चेतना, पृ.41.
7. गोपाल शर्मा, आजादी के बाद, पृ. 67.
8. वही, पृ.66.
9. सुनीता आनन्द, (अप्र.शो.प्र.) उदयभानु हंस के काव्य में सामाजिक चेतना, पृ.39.
10. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य की महता, पृ. 6.
11. सुनीता आनन्द, (अप्र.शो.प्र.) उदयभानु हंस के काव्य में सामाजिक चेतना, पृ. 42.
12. वही, पृ.42.